समकालीन समाज में बुद्धिजीवी

भारत नीति प्रतिष्ठान

दृष्टिकोण

समकालीन समाज में बुद्धिजीवी

India Policy Foundation
भारत नीति प्रतिष्ठान

इस प्रकाशन के किसी भी अंश का प्रतिलिपिकरण, ऐसे यंत्र में भंडारण जिससे इसे पुनः प्राप्त किया जा सकता हो या स्थानान्तरण, किसी भी रूप में या किसी भी विधि से, इलेक्ट्रॉनिक, यांत्रिक, फोटो–प्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग या किसी और ढंग से, प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना नहीं किया जा सकता।

© India Policy Foundation

प्रकाशकः
भारत नीति प्रतिष्ठान
डी–51, हौज खास
नयी दिल्ली–110016 (भारत)
दूरभाष : 011–26524018
फैक्स : 011–46089365
ई.मेल : indiapolicy@gmail.com
वेबसाइट : www.indiapolicyfoundation.org

संस्करण : प्रथम, 2012
द्वितीय, 2012

भारत नीति प्रतिष्ठान

मूल्य : ३0/– रुपये मात्र

मुद्रक : Arora Enterprises

अनुक्रमणिका

1. प्राक्कथन – प्रो. राकेश सिन्हा
2. छद्म बौद्धिकता का तोड़ जरूरी – आर. वेंकट नारायणन
3. भारतीय परिप्रेक्ष्य में विरासत की उपेक्षा – आशुतोष
4. वस्तुनिष्ठता और संत जीवन – बौद्धिकता का शाश्वत आधार – दत्तात्रेय होसबाले

प्राक्कथन

मनुष्य जीवन की शाश्वत विशेषता चिरंतन सोच है। इस प्रक्रिया में कहीं पूर्व विराम नहीं होता है। जिस समाज, समुदाय या सभ्यता ने चिंतन की परंपरा को रोकने या उसका अवमूल्यन करने का प्रयास किया उसे अवनति, पिछड़ापन और अंततः अस्तित्व के संकट से गुजरना पड़ा। रोम की सभ्यता का अंत इसका सबसे अच्छा उदाहरण है। उन्नति के शिखर पर पहुंचकर रोम पदार्थवादी बन गया और विचार – प्रवाह का उपक्रम उपेक्षा का शिकार हुआ। व्यक्ति, संस्था, समुदाय, समाज और सभ्यता सबों पर यह बात कमोबेश समान रूप से लागू होती है। इसीलिए स्वतंत्र, स्वायत और स्वार्थहोन चिंतन की आवश्कता हर कालखंड में होती है।

किसी भी समाज के प्रत्येक कालखंड में एक बौद्धिक वातावरण होता है। वह वातावरण कितना सकारात्मक, प्रगतिशील और लोकतांत्रिक है यह दो बातों पर निर्भर करता है। पहला यह कि उस कालखंड की प्रबल धारा के पक्षधरों द्वारा असहमतियों, वैकल्पिक सोच–समझ एवं विरोध के प्रति क्या नजरिया होता है और दूसरा यह कि विश्वविद्यालय परिसरों, सार्वजनिक मंचों एवं सामाजिक, राजनीतिक विमर्शों में असहमति और विरोध एवं विकल्प के स्वर को स्वतंत्रता, सुरक्षा और वैधानिकता की कितनी अनुमति प्राप्त होती है।

इन दोनों बातों में जितनी ही सार्थकता होगी, समाज का वैचारिक पक्ष उतना ही मजबूत होगा। गतिमान समाज 'ही' की मानसिकता वाले परिवेश से दूरी बनाता है और 'भी' को आत्मसात करता है। 'मैं ही', 'मेरी ही', या 'मैं भी' ये दोनों विकल्प साथ–साथ चलते हैं। पहला प्रलय की ओर ले जाता है दूसरा प्रगति की ओर। सहमति–असहमति के दौर से ही समाज गुजरकर अपनी सामाजिक परंपरा और राजनीतिक भविष्य को सजाता एवं संवारता है। एक उदाहरण इस संदर्भ में प्रासंगिक है। औपनिवेशिक काल में समाज की प्रचलित मान्यताओं पर विमर्श, विवाद और टकराव होता रहा। ऐसा ही एक प्रश्न विधवा विवाह का था। विधवा विवाह के समर्थन में ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने जो ज्ञापन औपनिवेशिव प्रशासन को दिया था उस पर मात्र 987 लोगों ने हस्ताक्षर किए थ जबकि इसके विरोध में राधाकांत देव द्वारा दिए गए ज्ञापन पर 36,787 लोगों ने हस्ताक्षर किए थे। परन्तु स्वस्थ बहस, स्वार्थहीन वैचारिक टकराव ने अंततः समाज को अल्पसंख्यक मत मानने के लिए प्रेरित किया। औपनिवेशिक काल की एक दूसरी विशेषता थी कि साम्राज्यवाद विरोध के संघर्ष के साथ–साथ दर्जनों वैचारिक धाराएं सामाजिक–राजनीतिक पटल पर सक्रिय थी, गांधीवाद, सुभाषवाद, मार्क्सवाद, सावरकरवाद, समाजवाद, पूंजीवाद, वर्णव्यवस्थावाद, सामाजिक समानतावाद इत्यादि। यह वैचारिक संपन्नता का भी काल था।

वैचारिक बहुलता भारतीय समाज की प्रकृति के अनुकूल है। यह सामाजिक एवं आध्यात्मिक जीवन दोनों में साफ दिखाई पड़ता है। इसके लिए अधिक व्याख्या की भी आवश्यकता नहीं हैं। औपनिवेशिक काल में ही कांग्रेस के सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक सोच से असहमति की अभिव्यक्ति भारतीय कम्युनिष्ट पार्टी, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, हिन्दू महासभा, कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी और मुस्लिम लीग जैसी अनेक संस्थाओं के द्वारा होती

रही थी। महात्मा गांधी और डॉ. अम्बेदकर, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक एवं गोपाल गणेश आगरकर के बीच विचार एवं कार्यक्रम के स्तरों पर बहस एवं विवाद उस बौद्धिक वातावरण का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज हैं। ऐसे दर्जनों उदाहरण उपलब्ध हैं।

इसीलिए आजादी के बाद यह अपेक्षा थी कि राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न पक्षों पर विश्वविद्यालय परिसरों, अखबार के पन्नों एवं सार्वजनिक मंचों पर स्वतंत्र और सकारात्मक विमर्श उन प्रश्नों का समाधान ढूंढ़ने में मदद करेगा जो धुंधलेपन के शिकार हो रहे हैं। स्वतंत्र भारत के सामने आर्थिक प्रश्नों के अतिरिक्त सामाजिक समानता, भारतीय राष्ट्रीयता धर्मनिरपेक्षता की भारतीय परंपरा, प्रकृति और विरासत के आधार पर समाधानात्मक वैचारिक बहस की आवश्यकता थी। इस दिशा में हम कितने सफल हो पाए यह प्रश्न विचारणीय है। जब वैचारिक पक्ष कमजोर पड़ता है। तब समाज जीवन में प्रतिक्रियावादी ताकतें पहचान की राजनीति को जन्म देती है और समाजशास्त्र उसे अंगीकार करने के लिए बाध्य होता है। इस संदर्भ में हम देखें तो आजादी के बाद सामाजिक एवं राष्ट्रीय प्रश्नों पर विमर्श सत्ता केन्द्रित एवं राज्याश्रित रहा। परिणामतः शैक्षणिक उपक्रमों एवं विमर्शों ने जिन बातों को स्थापित करने की कोशिश की वे सामाजिक सच्चाइयों से दूर रही। यही कारण है कि सामाजिक सच्चाइयों का प्रस्फुटन भी अलग–अलग तरीकों से हुआ। आज भारत का समाजशास्त्र उन सच्चाइयों को समझने, जानने और अपनाने की कोशिश कर रहा है। समाजशास्त्र या बौद्धिक विमर्श सामाजिक आयामों (Social dynamics) एवं सामाजिक ताकतों (Social forces) को कम प्रभावित कर रहा है और प्रभावित ज्यादा हो रहा है। किसी भी समाज के लिए यह चिंता का विषय होना स्वाभाविक है। इसका एक कारण भारत के शैक्षणिक जगत एवं बौद्धिकों पर पाश्चात्य सोच एवं मार्क्सवादी दृष्टि इतनी हावी रही कि वे अपने आसपास की सच्चाईयों को समझने के लिए भी मार्क्स और मेकियावेली पर निर्भर बने रहे। सार्वजनिक मंचों एवं मीडिया पर दशकों से आधिपत्य बना रहा। वे अपने आप को सामाजिक बदलाव का नेतृत्व करने में पूरी तरह निष्प्रभावी महसूस कर रहे हैं। तभी तो बौद्धिकता, व्यावसायिकता एवं राज–व्यवस्था का मुकुट मात्र बनकर रह गया है। भारतीय समाज को जिन लोगों ने प्रभावित किया, इसके विरोधाभासों को कम करने की सफल चेष्टा की और आशावाद का संचार किया वे पुस्तकालययार्थी मात्र नहीं थे। वे प्रयोगधर्मी थे। विनोबाभावे, जयप्रकाश नारायण और नानाजी देशमुख इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। इसी प्रयोगधर्मिता से उपजने वाली बौद्धिकता सामाजिक जीवन को सकारात्मकता और सुसंगता के प्रति उन्मुख करता है।

विश्वविद्यालय परिसरों एवं बौद्धिक उपक्रमों की विफलता का कारण वातावरण को वैचारिक रूप से नियंत्रित करने का प्रयास रहा है। इसमें नेहरूवादी अवसरवाद एवं मार्क्सवादी अधिनायकवाद दोनों के अघोषित समझौतों ने भारतीय समाज के पचार साल के कालखंड में जिस बौद्धिक वातावरण का निर्माण किया उसमें वैचारिक असहमति और विरोध भी नियंत्रित रहा है। वैचारिक बहुलता पर इतना बड़ा प्रहार औपनिवेशिक काल में भी नहीं हुआ। इसने बौद्धिक जगत में अर्द्ध–फासीवाद को जन्म दिया। साहित्य, समाजशास्त्र और बौद्धिक विमर्शों में वैधानिकता एवं प्रमाणपत्र देने की प्रक्रिया ने

बहुलवादी रचना को ध्वस्त कर दिया। विशेषकर धर्मनिरपेक्षता पर भारतीय जीवननिष्ठ वैकल्पिक सोच पर जितना बौद्धिक प्रहार हुआ उसने वैचारिक प्रदूषण और सामाजिक टकराव को जन्म दिया। समाजशास्त्र और विश्वविद्यालय परिसर जब अपनी विफलता का आभास कर रहा है तब एक बार फिर वैचारिक बहुलवादी बौद्धिक वातावरण को पुनः स्थापित करने का प्रयास तेज किया जाना चाहिए।

आज के परिवेश में बौद्धिक वातावरण को परिभाषित करती हुई यह पुस्तिका इस बहस का सार्थक उपक्रम साबित हो सकती है। श्री दत्तात्रेय होसबाले, श्री आशुतोष एवं श्री वेंकटनारायणन ने विगत 17 फरवरी, 2012 को भारत नीति प्रतिष्ठान की वेबसाइट के लोकार्पण के अवसर पर आयोजित एक संगोष्ठी में अपने विचार व्यक्त किए थे। "समकालीन समाज में बुद्धिजीवी" विषय पर आयोजित इस सगोष्ठी का उद्देश्य मौजूदा राष्ट्रीय, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में बुद्धिजीवियों के योगदान को रेखांकित करना था। इसी उद्देश्य के केंद्र में प्रबुद्ध बुद्धिजीवियों द्वारा व्यक्त किए गए विचारों को यहां इस पुस्तिका के माध्यम से प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रो. राकेश सिन्हा
मानद निदेशक
भारत नीति प्रतिष्ठान

दिनांक : 07 जुलाई, 2012

छद्म बौद्धिकता का तोड़ जरूरी

आर. वेंकट नारायणन

भारत सरकार के सेवा निवृत सचिव और आचार्य धर्म सभा के सचिव श्री वेंकट नारायणन एक कुशल प्रशसक और प्रबुद्ध चिंतक भी हैं। बौद्धिकता के परिवेश में उनकी परिभाषा समाज में मौजूद छद्म बौद्धिकता को तोड़ने से भी परहेज नहीं करती। उनका स्पष्ट मानना है कि बुद्धिजीवी के दो रूप होते हैं– विकासकारी और विनाशकारी। बुद्धिजीवी जैसा भी हो उसके प्रमुख चारित्रिक गुण भी होने चाहिए। उनके नजर में क्या होन चाहिए एक बुद्धि जीवी के चारित्रिक गुण? इन सभी बातों का खुलासा श्री नारायणन ने समकालीन "समाज में बुद्धिजीवी" विषय पर विगत 17 फरवरी, 2012 को आयोजित एक संगोष्ठी को संबोधित करते हुए किया था।

(1) अपनी सुविधा के लिए हम उस व्यक्ति को बुद्धिजीवी कह सकते हैं जो तेज तर्रार हो और अपनी बुद्धि का बेहतरीन तरीके से सार्वजनिक प्रदर्शन कर सके। बुद्धिजीवी विनाशकारी भी हो सकता है। पर फिलहाल हमें ऐसे व्यक्ति को बुद्धिजीवी की परिभाषा में शामिल करना चाहिए।

(2) एक बुद्धिजीवी के मुख्य चारित्रिक गुण क्या होने चाहिए? वह बड़ा पढ़ाकू हो। पढ़ाकू केवल किसी संकीर्ण मानसिकता तक सीमित विषय की विशेषता के रूप में नहीं और न ही इस अर्थ में कि अपनी बोल–चाल और लेखन में भारी–भरकम शब्दावली को इस्तेमाल कर सामने वाले को प्रभावित करने की कोशिश की जाए। बुद्धिजीवी के लिए अपनी आजाद सोच का होना बहुत जरूरी है। ताकि वह अपने विश्लेषण और प्रस्तुति में मौलिकता प्रदर्शित कर सके। एक बुद्धिजीवी के लिए अच्छा वक्ता होना भी जरूरी है। वक्ता, ऐसा नहीं जो लोकप्रिय मुहावरों और लोकोक्तियों का इस्तेमाल कर श्रोताओं को चमत्कृत करने की कोशिश करे बल्कि ऐसा वक्ता जो अपने विषय की गहराइयों को समझ कर दूसरों को भी कुछ सोचने पर विवश करे और परस्पर संवाद कर सके। उसकी अपनी निजी साख होने के साथ हो आधार भी मजबूत होना चाहिए, ताकि मजबूती के साथ अपना विश्लेषण पर टिका रह सके। मैं नहीं समझता कि एक अखबार का वेतन भोगी संपादक बुद्धिजीवी की हमारी परिभाषा में फिट बैठेगा। हमारी परिभाषा के मुताबिक उसमें लचीलापन होना चाहिए। हठधर्मी या कट्टर नहीं।

किसी शैक्षिक संस्थान या किसी तकनीकी संस्थान में अध्यापन करने मात्र से ही किसी को बुद्धिजीवी नहीं कहा जा सकता। किसी को ऐसा दावा भी नहीं करना चाहिए। कोई अगर यह कहे कि दो–चार विषयों में एम.ए. करने या किसी स्वदेशी अथवा विदेशी विश्वविद्यालय से पीएचडी कर लेने स व्यक्ति बुद्धिजीवी हो जाता है तो वह बड़ी गलतफहमी में है। एक बुद्धिजीवी के लिए तीक्ष्ण बुद्धि को होने से साथ ही ताजा तरीन और खुले दिमाग से सोचने वाला भी होना जरूरी है ताकि वह व्यावहारिक धरातल में प्रयोगधर्मिता का उपयोग कर सके और परिस्थितियों के अनुरूप अभिव्यक्ति कर सके। सामाजिक विषयों– विशेषकर समाज के विविध आयामों, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय परिवेश का ऐतिहासिक ज्ञान भी एक बुद्धिजीवी को जरूर होना चाहिए। बुद्धिजीवी का इतिहास ज्ञान उसके चिंतन मूल्य में अतिरिक्त मदद करेगा। इससे उसकी अभिव्यक्ति और अधिक प्रभावशाली हो जाएगी। अंत में एक बुद्धिजीवी के लिए समाज के उन व्यक्तियों की सांस्कृतिक विरासत को समझना बहुत जरूरी है जिनके बारे वह कुछ बोलता या लिखता है। इस तथ्य को बहुत गंभीरता से लिया जाना चाहिए क्योंकि समाज के बारे में कुछ भी लिखने या बोलने से पहले समाज की संस्कृति, इतिहास और छोटे–छोटे पहलुओं को समझना नितांत आवश्यक है। सांस्कृतिक बुनियाद का कमजोर होना किसी भी बुद्धिजीवी के लिए बहुत घातक और नुकसानदायक है।

(3) हमारे देश के मौजूदा संदर्भ में हम किसे बुद्धिजीवी कह सकते हैं।

(क) हमारे देश के लोग (पुरूष और महिला सभी) किसी भी विचार को गलत तरीके से समझने तथा उसका गलत विश्लेषण करने के मामले में सिद्धहस्त हैं। यहां तक कि हम 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द का इस्तेमाल केवल उस व्यक्ति के संदर्भ में करते हैं जो हिन्दू नहीं हैं अथवा हिन्दू विरोधी हैं। यह एक आम धारणा बन गई है और आम तौर पर हम ऐसे आलोचक को 'धर्मनिरपेक्ष बुद्धिजीवी' कहने लगे हैं जो व्यवस्था विरोधी हो। पढ़े–लिखे कम्युनिस्ट भी धर्मनिरपेक्षता की इसी परिभाषा के चलते बुद्धिजीवी कहलान लगे हैं। मान लीजिए कि अगर आप किसी वजह से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ या विश्व हिन्द परिषद में हैं या फिर किसी भी तरह परोक्ष रूप से उनकी मदद करते हैं तो आप बुद्धिजीवी नहीं हैं। अगर आप किसी राजनीतिक मकसद के लिए कम कर रहे हैं और सरकार विरोधी है, आप किसी मकसद को पूरा करने के लिए सक्रिय हैं तो आपको बड़ी आसानी से बुद्धिजीवी का छद्म आवरण भारत में पहनाया जा सकता है।

(ख) हमारे देश में बुद्धिजीवी होने का एक बड़ा पैमाना यह भी है कि आप गरीब और वंचित तबकों के पक्ष में अपनी आवाज लगातार बुलंद रखें। किसी को इससे कोई

मतलब नहीं है आप गरीबों के बारे में कितना जानते हैं या फिर गरीब होने का अहसास तक आपको है भी या नहीं और इसका मतलब यह कि गरीब हमेशा गरीब ही रहे। अगर आप दिन में एक मछली खाने वाले गरीब को यह सलाह दें कि वह दिन में सिर्फ एक मछली ही खाए, आप उसे यह सलाह न दें कि वह कैसे अपने भोजन में मछली की मात्रा बढ़ा सकता है। उसे आप जाल से मछली पकड़ने की सलाह न दें, तो आप समाज के सम्मानीय और डरे सहमे बुद्धिजीवी बन सकते हैं।

(ग) हमारे देश एक औसत बुद्धिजीवी राक्षसी प्रवृत्ति में सिद्धहस्त होता है, वह किसी भी व्यक्ति, समूह और समाज के किसी भी तबके या पूरे समाज का राक्षसीकरण कर सकता है। किसी आयोग या समिति के मुख्या अथवा सक्रिय भागीदार के रूप में इस प्रवृत्ति के विशेषज्ञों की समाज में बहुत मांग है और ये लोग निराधार सामाजिक और आर्थिक आंकड़ेबाजी के आधार पर किसी एक या दूसरे समूह को शांत कर सकते हैं या अनुकूल स्थितियां बनाने में पारंगत होते हैं।

(घ) हमारे देश में कई लोग केवल यही बात खोजने, उसका विश्लेशण करने और उस बात को लेकर प्रहार करने की विद्या में पारंगत होते हैं कि समाज में, राज्य में या फिर किसी भी सामाजिक मंच में गलत क्या हो रहा है, और ये बुद्धिजीवी कहलाते हैं। उनक पास ऐसे भी समस्या का न कोई सर्वमान्य व्यावहारिक हल होता है न वह समस्या का हल होती है। समस्या का हल निकालने के लिए उनके दिमाग की कोई भी खिड़की काम ही नहीं करती। लिहाजा उनसे यह उम्मीद ही नहीं की जा सकती कि वह समस्या का हल खोजने के लिए अपने दिमाग का इस्तमाल करें। उदाहरण के लिए अगर आप लगातार परमाणु ऊर्जा का विरोध करते रहें या फिर आतंकियों का सामना करने के लिए जम्मू–कश्मीर में लागू ए.एफ.पी.एस.ए. (विशेष सशस्त्र बल कानून) का विरोध करते रहें, या फिर जल विद्युत परियोजनाओं या खनन या भ्रष्टाचार का विरोध रहें तो आप एक बुद्धिजीवी हैं। अगर आप अंग्रेजी में शब्दों के साथ खिलवाड़ करने में माहिर हैं और उदाहरण के तौर पर आप State in India is terrorist (भारत में आतंक की स्थिति), bureaucracy is corrupt (पूरी अफसर शाही भ्रष्ट है), all politician are rotton (सारे राजनीतिज्ञ बेकार हैं), जैसे मुहावरों का इस्तेमाल अपने सावधि लेखों के माध्यम से करके किसी पर भी कीचड़ उछालने का काम कर सकते हैं तो आप में बुद्धिजीवी होने की सभी योग्यताएं विद्यमान हैं। इसके अलावा अगर आप बुकर, मैग्सेसे, न्यूरमबर्ग और अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार जैसे पश्चिमी देशों द्वारा स्थापित अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कारों में से कोई

एक पुरस्कार हासिल करने की महारत रखते हैं तो फिर आपको एक प्रतिष्ठित बुद्धिजीवी होने से कोई नहीं रोक सकता।

(च) आज भारत में एक सम्मानीय बुद्धिजीवी होने के दोहरे मापदंड अपनाए जाते ह। यानी उसका दोगला होना जरूरी है। यह बुद्धिजीवियों का दोगलापन ही है कि उनकी नजर में हंस या बत्तख के लिए जो अच्छा नहीं होता। इसीलिए वह सलमान रश्दी और नाजरीन को एक पायदान पर रखते हैं लेकिन एम.एफ. हुसैन को दूसरे पायदान पर जबकि ये दोनों अल्पसंख्यकों के धार्मिक पक्ष को ही सामने रखते हैं।

(छ) लेखकीय संदर्भ में हमारे देश में लेखकों को लेकर एक और विशिष्टता देखी जा सकती है। वह विशिष्टता यह है कि उसे आजाद होकर उन सारी प्राचीन, सामाजिक मान्यताओं की धज्जियां उड़ानी चाहिए जो हमारे देश में युगों से विद्यमान हैं और लोग सम्मान के साथ उन परंपराओं का पालन करते हैं। अगर ऐसे मुद्दों पर कोई किताब लिखी जाए जिसमें इन तमाम तरह की मान्यताओं का अपमान किया गया हो, अगर ऐसी किसी विशिष्ट किताब पर विदेशी पुरस्कार भी मिल जाए तो कहने ही क्या? वह लेखक रातों रात सेलिब्रिटी होने के साथ ही एक सम्मानित बुद्धिजीवी होने का खिताब भी हासिल कर लेता है। ऐसे लेखक को प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति जरूरत पड़ने पर विदेशी मेहमानों के साथ मुलाकात के लिए आमंत्रित भी करते हैं।

(ज) संक्षेप में एक बुद्धिजीवी किसी विशेष प्रयोजन के लिए बुद्धिजीवी होता है। हमारे देश में प्रयोजन बौद्धिकता पर हावी हो जाता है। देश के बाहर पहचान मिलना अतिरिक्त योग्यता हो जाती है।

4. सबसे गंभीर बात यह है कि एक बुद्धिजीवी की समाज में क्या भूमिका है और क्या है समाज में उसका महत्व? मोटे तौर पर बुद्धिजीवियों से यह उम्मीद की जाती है कि वो जनता की सोचने की शक्ति और प्रक्रिया को गति दें, अगर वे समाज के प्रति उत्तरदायी हैं तो उन्हें ऐसा अवश्य करना चाहिए। लोकतंत्र में नीतियों के निर्माण जनता की राय बहुत महत्वपूर्ण मानी जाती है। राजनीति के विदूषक जनता की राय को द्वेष की बनियादी भावना और नारेबाजी से पलटने से बाज नहीं आते। कई बार तो अपनी बात ऊपर रखने के लिए ये लोग छोटी–छोटी बातों पर तर्क करने और हिंसा का दामन थामने से भी संकोच नहीं करते। ऐसे में बुद्धिजीवियों की यह जिम्मेदारी बनती है कि वह जनता की राय और उसको प्रतिक्रिया में राजनीतिक विदूषकों के जवाब की सूचना जनता को दे। हमारे जैसे विशाल देश में जनता की राय को कोरे लोक लुभावन नारों से दबाया नहीं जा सकता। इसकी सूचना दी जानी चाहिए और जरूरत के मुताबिक इसमें बदलाव भी

किया जाना चाहिए। अन्ना के सवालों के दाये में रखे गए सवाल और जनता के भीड़ भरे ऊफान से जन प्रशासन की नीतियों और प्रक्रिया को बदला नहीं जा सकता। नीति निर्धारकों को समाज से जुड़े बुद्धिजीवियों को नीति निर्माण के मामले में विचार–विमर्श के लिए अवश्य शामिल करना चाहिए। उनकी राय लेनी चाहिए। ऐसे बुद्धिजीवियों का चुनाव समाज में उनकी साख को ध्यान में रखकर करना चाहिए। संबंधों और किसी अघोषित एजेंडे को ध्यान में रखकर नहीं। इस मामले में स्वतंत्र विचारकों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है।

(5) थिंक टैंक अपने भाव प्रणव, गंभीर और गहराई से भरे अध्ययन के आधार पर अपने लेखन और ओजस्वी भाषण से इस उद्देश्य की पूर्ति कर सकते हैं। उनको महज रिएक्टिव (प्रति सक्रिय) नहीं होना होगा। मतलब यह है कि थिंक टैंक किसी मुद्दे पर केवल प्रतिवादी की भूमिका न निभाएं बल्कि उनके पास अपनी एक ताजा सोच और विचार का हाना भी निहायत जरूरी है ताकि वह किसी मुद्दे पर एक नया और मौलिक विचार पेश कर सकें। आज हमारे देश में भी ऐसे कुछ थिंक टैंक हैं जो भारतीय जन मानस की मान्यताओं से जुड़े होने के कारण बुनियादी मुद्दों पर अपनी ठोस और व्यावहारिक राय देने में समर्थ हैं। निश्चित ही तात्कालिक महत्व के ज्वलंत मुद्दे बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। तात्कालिक महत्व के इन मुद्दों में सदभावना के लिए सामाजिक नीति और राजनीतिक संगठन, स्वास्थ्य और संपन्नता के लिए उचित और संतुलित आर्थिक विकास जैसे विषयों को शामिल किया जा सकता है। पर इसके अलावा भी यहां मौलिकता, आध्यात्म, विज्ञान और सौंदर्य जैसे अनेक वैश्विक विचारों का भी बहुत व्यापक संसार है। हमारी संस्कृति और सभ्यता के ऐसे कई आयाम हैं जिन पर हमारे थिंक टैंक को गंभीरता से विचार करने और नई प्रस्तुति सामने रखने की जरूरत है इससे हमारे समाज के ज्ञान, कल्याण और प्रगति को बहुत फायदा होगा।

(6) हमारे देश में थिंक टैंक को वित्तीय मदद एक विचारणीय मुद्दा है। पश्चिमी देशों में मानव कल्याण की ऐतिहासिक व्यवस्था है जिसके तहत थिंक टैंक को मदद करने का भी प्रावधान है। इसके अलावा संपन्न परिवार भी इस काम में आर्थिक मदद करते हैं। यही नहीं, पश्चिम के देशों में तो पूर्वनिर्धारित जन नीति के लिए सरकारी संगठन भी बड़े पैमाने पर थिंक टैंक को वित्तीय सहायता देते हैं। हमारे देश में सरकार थिंक टैंक को भरोसे में रखने का कोई काम नहीं करती। सरकार में रूचि और वित्तीय क्षमता और जागरूकता के अभाव के चलते थिंक टैंक का प्रयोजन होना चाहिए और उसको कानूनी आधार पर ही मजबूत बनाना चाहिए। निस्संदेह खर्च और गुणवत्ता दोनों

ही स्तर पर जवाबदेही का होना बहुत जरूरी है। पर इसके लिए ऐसा माहौल भी होना चाहिए जिसमें सभी मुद्दों पर खुलकर चर्चा की जा सके। इसका मतलब यह है कि चाहे कितनी ही गरमा–गरम बहस क्यों न हो पर स्थिति हर हालत में नियंत्रण में रहे। प्रशासकीय संस्थाओं और थिंक टैंक के मौजूदा नेतृत्व की यह जिम्मेदारी भी बनती है कि वह दूसरी पंक्ति का नेतृत्व भी विकल्प क रूप में उपलब्ध कराएं ताकि थिंक टैंक द्वारा किए जाने वाले कार्यों की निरंतरता बनी रहे।

(7) थिंक टैंक की सफलता और उपयोगिता का मापदंड उनके प्रकाशन और उन प्रकाशनों को श्रोताओं और पाठकों से मिली प्रशंसा ही होता है। अगर पाठक और श्रोता इन प्रकाशनों से सहमत हैं तो थिंक टैंक की उपयोगिता और सफलता का आंकलन इस आधार पर किया जा सकता है कि श्रोता और पाठक अपने थिंक टैंक के लेखकीय योगदान से कितने सहमत हैं और क्यों सहमत हैं। इस संबंध में इस तथ्य पर भी विचार किया जाना चाहिए कि थिंक टैंक ने जो काम किया है उस पर उनकी कितनी आलोचना हुई और कितनी प्रशंसा वही लोग कर सकते हैं जो थिंक टैंक के दायरे से बाहर के हों। थिंक टैंक के कामकाज का वस्तुनिष्ठ आंकलन करने के लिए यह जानना भी जरूरी होगा कि लोक महत्व की नीतियों पर उनके विचार का क्या असर पड़ा और उनकी सोच कितनी व्यावहारिक है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में विरासत की उपेक्षा

आशुतोष

आई.बी.एन–7 के प्रबंध संपादक श्री आशुतोष पत्रकारिता में अपनी प्रखरता एवं ओजस्विता के लिए जाने जाते हैं। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त श्री आशुतोष ने "समकालीन समाज में बुद्धिजीवी" विषय पर विगत 17 फरवरी, 2012 को आयोजित गोष्ठी में बुद्धिजीवियों के योगदान को रेखांकित करते हुए अपने संबोधन में अन्ना हजारे के भ्रष्टाचार विरोधी जन आंदोलन को भी केंद्र में रखा था। उनका मानना है कि जन आंदोलन का नायक हो यह जरूरी है। जन नायक के लिए जनता की समस्याओं और समस्याओं के संभावित समाधान की समझ होना ज्यादा जरूरी है और यह समझ अन्ना हजारे में हैं। लिहाजा अन्ना हजारे और उनके आंदोलन को एक सिरे से नकारने की बौद्धिकता समझ से परे है। आशुतोष ने अपने उद्‌बोधन देश के बुद्धिजीवियों द्वारा विदेशी चिंतकों पर अत्याधिक वैचारिक निर्भरता और भारतीय मनीषा की उपेक्षा पर चिंता जताई है।

बहुत से लोगों को जलन भी होती है, ईर्ष्या भी होती है और इसी जलन और ईर्ष्या से अपशब्दों की उत्पत्ति भी होती है। ये अपशब्द जिन्हें हम गालियां भी क सकते हैं, का कोप भाजन मुझे भी बनना पड़ता है और कभी–कभी शायद राकेश जी को भी बनना पड़ता होगा। लेकिन मुझे लगता है ये गालियां अच्छी भी हैं, कभी–कभी होनी भी चाहिए। जो बातें आज कही गई मुझे लगता है पिछले एक डेढ़ साल में इस देश के अंदर जो कुछ भी हुआ है उसके संदर्भ में बहुत सही हैं, बहुत सटीक हैं और उस पर खुलकर चर्चा होनी चाहिए।

हमारे यहां एक दुर्भाग्य यह हो गया है कि किसी मुद्दे पर खुलकर चर्चा होनी बन्द हो गई है। अगर आप खुल कर अपनी बात करते हैं, खुलकर चर्चा करते हैं, उस पर आप अपनी बात रखना चाहते हैं तो या तो आपका मुंह काला कर दिया जाता है या आपके संस्थान पर पत्थर फेंके जाते हैं, या आप पर हमले होते हैं या आपको ट्विटर या फेसबुक में इतना बुरा–भला कहा जाता है कि अगर आप उसको लिखते हैं तो आप खुद शर्म करेंगे। इसलिए जब मैं पिछले एक साल को लेकर बात कर रहा था तो उसमें मीडिया को लेकर एक आत्ममंथन भी है। समाज को अपने अंदर एक आत्ममंथन करना चाहिए और सबसे बड़ी बुद्धिजीवियों को भी आत्ममंथन करना

चाहिए। पिछले एक साल की बात करने का कारण बहुत साधारण है।

पिछले एक साल के अंदर हिन्दुस्तान में एक नई उम्मीद, एक नई आशा जागृत हुई। पिछला एक साल अगर 2जी घोटाले, 76 हजार करोड़ के घोटाले, कलमाडी के चेहरे, अशोक चौहान के चेहरे और बहुत सारे स्याह कारणों से जाना जाएगा तो यह इसका एक पहलू है। इसका दूसरा पहलू जिस तरह से यह कहा जाने लगा कि हिन्दुस्तान में भ्रष्टाचार इस कदर बढ़ चुका है कि हमारे जड़ें सूख चुकी हैं और हिन्दुस्तान अब कभी भी ध्वस्त हो सकता है। ये तस्वीर का एक ऐसा पहलू है जिसपर लोगों की नजरें जाती हैं, जिसकी वजह से लोग गालियां देते हैं, जिसी वजह से लोग यह कहने लगे हैं कि हिन्दुस्तान को अपना सिस्टम बदलना चाहिए। लेकिन इसका एक दूसरा पहलू भी है कि हिन्दुस्तान का आम नागरिक जो अब तक सोया हुआ था अब जागा है। मैंने कम से कम अपनी पत्रकारिता के इतिहास में कभी इतना बड़ा जन आंदोलन नहीं देखा। लोग जे.पी. के आंदोलन के बारे में बात करते हैं, लोग बोफोर्स के जमाने में राजीव गांधी के खिलाफ हुए एक आंदोलन के बारे में बात करते हैं, अयोध्या के आंदोलन के बारे में बात की जाती है, मंडल कमीशन के आंदोलन के बारे में बात की जाती है लेकिन बिना किसी संगठन के बिना किसी राजनीतिक दल के खुले सहयोग के इतना बड़ा आंदोलन इससे पहले कभी नहीं हुआ। जे.पी. के आंदोलन की अगर आप चर्चा करें तो तमाम राजनीतिक दलों ने ऊपरी तौर पर सहयोग किया था, उनका संगठन था, उनका स्ट्रक्चर था, खुलकर साथ थे मंच पर लेकिन जो आंदोलन पिछले दिनों भारत के अंदर हुआ है उससे आम नागरिक खुलकर सामने आया, सड़कों पर आया और जिस तरह 13 दिनों तक भयानक गर्मी, भयानक उमस में रामलीला मैदान में लोग 24 घंटे बैठे रहे वो अपने आप में यह दर्शाता है कि आम आदमी अब जाग गया है। वो कम से कम ये स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं कि देश के अंदर भ्रष्टाचार है और वह चुप रहेगा।

आप अगर लगातार होने वाले दो चुनावों को देखें, महाराष्ट्र को अगर छोड़ भी दें तो उत्तराखंड और पंजाब चुनाव में वोटिंग पर्सेंटेज में 10–12–15 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई जो इस बात का प्रमाण है कि लोगों में इस बात की उम्मीद है, आशा है कि देश के अंदर बदलाव आ सकता है, समाधान खोजा जा सकता है। लेकिन इसका जो सबसे दुखद पहलू था और उसकी वजह से मेरे अंदर आक्रोश भी था, गुस्सा भी था और अपने इस आक्रोश को मैंने एक पुस्तक की शक्ल भी दी है और वो पुस्तक बाजार में आ भी गई है और उस पुस्तक का नाम है Anna's 13 Days that Awakened India.

मेरे एक दोस्त ने पूछा सारे कॉलम हिन्दी में लिखते हैं, आप बचपन से हिन्दी में लिखते आए हैं और ये पुस्तक अंग्रेजी में क्यों? मैंन कहा ये पुस्तक गुस्से में लिखी गई है और ये पुस्तक उन English intellectuals को जवाब है कि जिनकी नजर में अन्ना का आंदोलन संसद विरोधी है, अलोकतांत्रिक है, संविधान विरोधी है और हिंसक है। पुस्तक के शोध के दरम्यान जब मैं अंदर तक पहुंचा तो मुझे रामसिंह गुहा का एक उद्धरण मिला जो उन्होंने कहीं और से लगाया था, दरअसल वो भी वही बात कहना चाहते थे कि एक सातवी–आठवीं पास आदमी, जो शुद्ध मराठी भी नहीं बोल सकता है वो कैसे हिन्दुस्तान के अंदर इतने बड़े आंदोलन का नेतृत्व कर सकता है? ये crush था, ये बुनियाद थी। हिन्दुस्तान के शीर्ष बुद्धिजीवियों की। यही तथ्य उनकी बुनियाद में था कि एक सातवीं पास आदमी जो सूट–बूट नहीं पहनता है जो अंग्रेजी नहीं बोल सकता है जो मराठी शुद्ध नहीं बोल पाता है, जो दिखने में बौद्धिक नहीं लगता है, जो गांधी टोपी पहना है, जो खद्दर का कुर्ता पायजामा पहनता है और जो दिखने में सुदर्शनीय नहीं है, खूबसूरत नहीं है और जिसको देखकर महिलाएं आहें नहीं भरती हैं वह हिन्दुस्तान का बुद्धिजीवी कैसे हो सकता है। वह इतने बड़े आंदोलन का सृजनकर्ता कैसे हो सकता है। इस उद्धरण में आगे यह भी जोड़ा गया कि वह तो सेना से भाग हुआ एक जवान था।

मैं अन्ना हजारे का समर्थन नहीं हूं। मैं उस आंदोलन का समर्थक हूं और इस बात का विरोधी हूं कि जब आपके विचार ऐसी जगहों से आए। अगर आप आंदोलन का विश्लेषण कर रहे हैं और आंदोलन को इस आधार पर खारिज कर रहे हैं कि वो व्यक्ति जो पढ़ा–लिखा नहीं है और सातवीं पास है तो वह आंदोलन नहीं कर सकता। मुझे इस पर आपत्ति है और मैंने कहा कि मुझे इस बात को उसी भाषा में जवाब देना चाहिए ताकि उन लोगों को लगे कि हां इस देश में कुछ लोग दूसरी तरीके से भी साचते हैं। मैंने कहा इसलिए ताउम्र हिंदी में लिखने के बावजूद मैंने अंग्रेजी में उसका जवाब दिया। मैंने कहा कि यह किस तरह की बौद्धिकता है कि जब विनयाक सेन जो अपनी विचारधारा में मूलतः संविधान विरोधी है, हिंसा में यकीन रखते हैं, उनको यदि हिंदुस्तान की अदालत सजा देती है तो उस पर हिंदुस्तान का सारा बुद्धिजीवी खड़ा हो जाता है और यह कहता है कि उनके मानवाधिकारों का हनन हो रहा है, बहुत गलत है। इस देश में एक व्यक्ति जो पिछले एक साल के अंदर चाहे वो रामलीला मैदान हो, चाहे वो जंतर–मंतर हो कोई बता दे कि एक पत्थर भी कहीं उछला हो, कहीं किसी किसी बस शीशा टूटा हो, कहीं आंसू गैस छोड़ी गई हो,

कहीं गोली चली हो उस आंदोलन के दौरान और उसको भाई लोग कहते हैं कि एक हिंसक आंदोलन है, संविधान विरोधी आंदोलन है।

जे.पी. आंदोलन के दौरान अगर आप ध्यान से देखें तो जेपी का आंदोलन जो एक गुजरात के एक इंजिनियरिंग कॉलेज में मैसबिल से बढ़ा था। उस छात्र आंदोलन के दौरान पहले या दूसरे दिन हिंसा हुई थी। रेक्टर का दफ्तर जलाया गया था और तमाम चीजें हुई थी। बाद में गया के अंदर गोलियां चलीं, 100 से ज्यादा लोग मरे थे। रोजाना सड़कों पर हंगामा होता था। मैं तब बहुत छोटा था। मैंने देखा था किस तरीके से उस दौरान वहां दुकानें लूटी जा रही थीं, यहां कुछ भी नहीं हुआ। मगर हम जेपी आंदोलन की तारीफ करेंगे और इस आंदोलन की बुराई करेंगे क्योंकि एक अनपढ़, गंवार सा दिखनेवाला आदमी जो हिन्दुस्तान के गांव से जुड़ा है, हिन्दुस्तान के गांव की भाषा बोलता है वो इस आंदोलन का नेतृत्व करेगा तो वो गलत होगा। असंवैधानिक होगा।

विनायक सेन का आंदोलन, वो सही होगा, जो भारत के संविधान, भारत की मूल आत्मा के खिलाफ है। ये जो दोगलापन है हमारे देश के बुद्धिजीवियों का। दिक्कत वहां पर है और ये क्यों है? यह इसलिए है क्योंकि हम शंकराचार्य को उद्धृत नहीं करेंगे, हम रामानुजम जो उद्धृत नहीं करेंगे, सांख्य को उद्धृत नहीं करेंगे। हम चार्वाक को उद्धृत नहीं करेंगे। लेकिन हम वाल्टेयर को उद्धृत करेंगे, हम कांट को उद्धृत करेंगे। हम हेडेन को उद्धृत करेंगे, हम मार्क्स को उद्धृत करेंगे तब यह सब होगा। बड़े दुर्भाग्य की बात है कि इस देश में तमाम ऐसे बुद्धिजीवी होते हैं उनको इस बुनियाद का फर्क नहीं पता है कि वो कांट को उद्धृत करने की बात कहते है कि कांट की थ्योरी ऑफ नॉलेज कितनी महान है और अगर आप ध्यान से देखें तो कांट का यह सिद्धांत तो दरअसल शंकराचार्य के ज्ञान के दर्शन की हूबहू नकल है। कांट की theory of knowledge है क्या? instinct, intellectual, और intuition। शंकराचार्य क्या कहते हैं? ज्ञान की तीन श्रेणियां वो भी बताते हैं उसमें भी instinc है, उसमें भी intellect है और उसमें भी intuition है। जहां वे अंत में कहते हैं कि वो सत्य क्या है? नेति–नेति जब वो सत्य की परिभाषा खोजते–खोजते अंत में पहुंचते हैं और कहते हैं कि सत्य यह भी नहीं ह ईश्वर वो भी नहीं है। क्योंकि जैसे हम बताएंगे कि ईश्वर हे हम ईश्वर को सीमित करने की कोशिश करेंगे और जैसे ही उसको परिभाषित करने की कोशिश करेंगे तो हम ईश्वर को सीमाओं में बांधते हैं। ईश्वर सीमाओं के परे है तब वो कहते हैं कि ये भी नहीं, वो भी नहीं है। नेती–नेति। ये भी है वो भी नहीं है। सत्य इसके कुछ और है, ईश्वर इसके कुछ और है तो हमें

शंकर का दर्शन खराब लगता है और कांट का दर्शन अच्छा लगता है क्योंकि कांट को उर्द्धृत करके हम अपने आप को प्रबुद्ध बनाने की कोशिश करते हैं ये एक बुनियादी फर्क है। बुनियादी फर्क इसीलिए है क्योंकि इस देश के अंदर अगर आपने देखा होगा तो एक खास तरीके के अंग्रेजी भाषी वर्ग का जो प्रभुत्व है, जो intellectual है उसने इस पूरे आंदोलन को खारिज करने की कोशिश की। जबकि उसके इस आंदोलन को खारिज करने का कोई कारण नहीं है। इस बात को समझने की कोशिश में नहीं है। बार–बार मुझे कहा गया तब मुझे लगा कि इसके पीछे कुछ और कारण हो सकता है एक सोच का, दूसरा कहीं न कहीं, जो राकेश जी ने कहा है कि हमारे देश के intellectualism intellectual की सबसे बड़ी मौत तब होती है जब वो बिना सोच–विचार के सत्ता के रूचि संधि करते हैं और मुझे लगा कि सत्ता के साथ बहुत सारे intellectual ने संधि कर ली है। सही बात क्या है ये वो कहना भूल गए।

इस पूरे संदर्भ में सबसे ज्यादा तकलीफ मुझे इसी बात से है। मुझे लगता है कि मेरी अपनी पांच अवधारणाएं हैं। जैसा अभी नारायणन जी ने कहा कि हिन्दुस्तान के intellectual बातें बहुत करते हैं पर समाधान नहीं देते हैं। मैंने कहा कि वेंकट नारायणन जी की नजर में आज मैं intellectual हो जाउंगा अगर मैं समाधान भी दे देता हूं चीजों को लेकर। तो बुनियादी दिक्कत कहां पर है। आज सबसे बड़ी दिक्कत यह है कि चाहे दक्षिणपंथी विचारक हों या वामपंथी विचारक हों, विचारधाराओं की जड़ता आपकी सोच को कुंद कर देती है। 1847 की विचारधारा 2012 में कैसे प्रासंगिक हो सकती है। मैं इस बात को कभी नहीं समझ पाया। 1990 में जो विचारधारा एक के बाद एक भरभरा कर गिर गई। उसको आज भी आप justify करने की कोशिश करेंगे तो गलत होगा। वो इसलिए कि विचारधारा ने आपकी दृष्टि को कमजोर कर दिया है। धूमिल कर दिया है। आप देख नहीं पा रहे हैं। विचारों की स्वतंत्रता होनी चाहिए। विचारधाराओं के कटघरे से बाहर निकलने की कोशिश करनी चाहिए। मुझे लगता है कि अगर हिन्दुस्तान को आगे जाना है तो उसे उत्तर या दक्षिण की विचारधाराओं से परे, पूंजीवाद, मार्क्सवाद या कुछ और वाद से अलग सोचना चाहिए। उसको विचारधाराओं के कटघरे में रह कर अपने आप को सही या गलत साबित करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। मुझे ऐसा लगता है कि हिन्दुस्तान के intellectuals को अब इस संदर्भ में लेना चाहिए। अगर आज मार्क्सवाद को देखें तो दुनिया में मार्क्सवाद ने एक ऐसे समाज की अवधारणा दी, समाज का विश्लेषण किया, विश्लेषण करने के बाद उस पर राज्य व्यवस्था बनी वह राज्य व्यवस्था क्या थी? जो अंत में स्वतंत्रता के

आधार पर शुरू हुआ जो हर व्यक्ति को आजादी देना चाहता था, उस विचारधारा ने हर व्यक्ति की सोचने की शक्ति को खत्म कर दिया। उसको पिंजड़ा बना दिया, उसको कैदी बना दिया। वो कुछ सोच ही नहीं सकता। शीर्ष पर बैठे हुए सिर्फ एक आदमी को सोचने की आजादी थी यानी जीवन के तमाम पहलुओं को पूरी तरीके से राज्यसत्ता के अधीन कर दिया।

अगर आप ध्यान से देखें तो जो पूंजीवादी व्यवस्था पश्चिम की है उसमें भी, कमोबेश यही स्थिति है। वहां भी आज नार्वे के एक मामले में एक मां–बाप को इसलिए अपने बच्चे से अलग कर दिया गया क्योंकि वो उसे अपने हाथ से खाना खिलाते थे। अब आप सोचिए जहां मां–बाप को अपने बच्चे को अपने हाथ से खाना–खिलाने की आजादी नहीं है। मेरी नजर में वो totalitarian state है वो कैसा आजाद देश है? west के अंदर अगर आज आप अपने बच्चे को एक थप्पड़ लगा दे तो वहां एक नम्बर होता है वो नंबर बच्चा जैसे ही दबाएगा वैसे ही अग्निशमन की गाड़ियां, पुलिस की गाड़ियां, एक साथ आ जाएंगी और हो सकता है आपको तीन दिन जेल में बिताना पड़े। मेरा यह कहना है कि पति–पत्नी के बीच का जो संसर्ग है उसको भी (पूंजीवादी व्यवस्था में अगर जाएंगे तो) define करता है, कैसे होना है? किस तरीके से होना है? तो ये क्यों है क्योंकि पूंजीवाद ने कुछ मार्क्सवाद से ग्रहण किया। मार्क्सवाद ने कुछ पूंजीवाद से ग्रहण किया और ग्रहण करके कुछ अलग सा घालमेल किया यानी विचारधाराओं की दीवारें टूटी हैं।

हमको भी intellectualism की विचारधाराओं के कटघरे से बाहर निकलकर सोचना पड़ेगा, स्वतंत्र दृष्टि लानी पड़ेगी। जैसा कि राकेश सिन्हा जी ने कहा है। दूसरी बात हिंदुस्तान के संदर्भ में यह इसलिए भी जरूरी है क्योंकि यहां diversity है, हम एक सोच को लेकर आगे बढ़ेंगे तो हम हिंदुस्तान के दूसरे कोने पर बैठे व्यक्ति की सोच को नहीं समझ पाएंगे। जो आदमी दिल्ली में है वो केरल के गांव की बात को कैसे समझ पाएगा। अगर वो अपनी विचारधारा को लेकर बात करेगा, अपने विचारों को थोपने की बात करेगा। तो ये diversity हमारी सबसे बड़ी ताकत है। अगर हम इस diversity को ठीक से नहीं संभाल पाए तो यकीन मानिए हिंदुस्तान का वही हस्र होगा जो यू.एस.एस.आर. का हुआ। इतने टुकड़े होंगे कि हम उसे संभाल नहीं पाएंगे। हमको अपने सिस्टम के अंदर वो resilience लाना पड़ेगा। सोच के स्तर पर लाना पड़ेगा। state apparatus के स्तर पर लाना पड़ेगा। हमको अपनी कथनी में उसको लाना होगा। हमको ये सोचना होगा कि तेलंगाना में बैठा आदमी ऐसा क्यों सोच रहा है। हम उसको rubbish नहीं कर सकते, उसको bulldoze नहीं

कर सकते। अग हम करेंगे तो एक नहीं हजारों तेलंगाना इस देश के अंदर होंगे हम कुछ नहीं कर पाएंगे। ये दर्शन के स्तर पर भी हमको लाना होगा।

तीसरी बात जो मुझे महत्वपूर्ण लगती है वह यह कि जो हिंदुस्तान के intellectuals को सोचना चाहिए जिसका बहुत भारी अकाल है। इस देश के अंदर वो यह है कि हमारी पूरी की पूरी सोच शहर तक सीमित है, अंग्रेजी भाषा तक सीमित है। convent तक सीमित है। उसको गांव से जोड़ने की कोशिश नहीं की गई। गांव में जाकर बातें करना एक फैशन हो गया है जसा कि नारायणन जी ने कहा है लेकिन क्या वाकई हमारे intellectual की सोच गांव तक जाकर उसको integrate करती है उनकी सोच को उनको energies करती है वहां से ऊर्जा देती है या नहीं, मुझ लगता है कि ऐसा नहीं है। जब तक नहीं होगा तबतक हिंदुस्तान की जोर आपार क्षमता है। अपार ऊर्जा गांव में सीमित है। उसका हम भला नहीं कर पाएंगे इसलिए जो बुनियादी original thinking होनी चाहिए वो अभी इस देश के अंदर नहीं है।

चौथी चीज जिसके बारे में गौर हाना चाहिए वो है Rule of Law। हमारे यहां लोग कहते हैं कि भ्रष्टाचार बहुत है। मैं कहता हूं भ्रष्टाचार है, भ्रष्टाचार हर समाज के अंदर है। अमेरिका के अंदर है, चीन के अंदर है। चीन में पिछले 2004 में साल 70,000 पीटिशन थे भ्रष्टाचार के खिलाफ। 2010 तक उसी संख्या दो लाख से ज्यादा हो गई। चीन में 2000 तक राजशाही रही। अगर आम आदमी को लग रहा है कि वहां के स्थानीय अफसर या मालिक जो है वो आपके साथ अन्याय कर रहा है तो आप पीटिशन दीजिए। वो पीटिशन के अंत में राजा तक पहुंचती है चूंकि अब वहां राजशाही नहीं है। माक्सवादी व्यवस्था आ रही है तो वहां पर अभी थी वो पीटिशन व्यवस्था जिंदा है। पीटिशन की जो व्यवस्था जो 20,000 थी आज वो बढ़कर पौने दो या तीन लाख के आस–पास हो गई है। यानी भ्रष्टाचार के भयानक किस्से है वहां पर। एक चीनी नेता को गिरफ्तार करके फांसी की सजा दी गई। तो भ्रष्टाचार हिंदुस्तान में है हम उसका रोना रोएं। हमारी संस्कृति में कोई गड़बड़ी है उससे कुछ नहीं होगा। वो क्यों है अमेरिका के अंदर भ्रष्टाचार है पर वहां कम क्यों है, क्योंकि वहां Rule of law है। अमेरिका में कानून का शासन है हमारे यहां कानून का शासन नहीं है। हमारे यहां कानून से बचने की तमाम कोशिश की है। अमेरिका में जॉर्ज बुश की बेटी शराब पीकर अगर गाड़ी चलाती है और पकड़ी जाती है तो उसे सजा मिलती है। हमारे यहां अगर किसी बड़े नेता के परिवार का आदमी शराब पीकर गाड़ी चलाता है तो पुलिसवाला उसे Salute मारेगा। उसमें पैसे भी नहीं लगेगा। उसे जाने देगा।

भ्रष्टाचार इसीलिए बढ़ रहा है क्योंकि हमारे यहां Rule of law नहीं है। तो हमें भी अपनी सोच में कहीं न कहीं Rule of law को जगह देनी होगी और देखना पड़ेगा।

पांचवी महत्वपूर्ण बात ये है कि इस दश के अंदर हम Technology Revolution के बारे में बात करेंगे। वेंकट नारायणन जी ने कहा कि कहीं भी पत्थर फेंक दीजिए दो IT के Professional मिल जाते हैं। बुहत अच्छी बात है हमने Software develop किया। लेकिन क्या हमने Original Computer develop किया? क्या हमने internet develop किया? नहीं। जो मौलिक (Fundamental) स्तर पर जो रिसर्च होनी चाहिए वो नहीं हो रही है हम borrowed स्तर पर काम कर रहे हैं। हमको लगता है कि कम्प्यूटर अमेरिका ने बनाया है। गाड़ी उन्होंने बनाई है। हमने पिछले नौ साल में ऐसी कोई चीज नहीं बनाई है जिसपर हमें गर्व हो। इसलिए उसे भी ठीक करने की जरूरत है।

छठी चीज जो है वह है value of life हमारे इस देश के अंदर किसी भी intellectual को लेकर तकलीफ नहीं होती है। सड़क पर कोई मर जाता है, कहीं पे फायरिंग हो जाती है 50 लोग मार दिए जाते हैं। उसे कोई चिंता नहीं होती है। आज आप देखिए इजराइल एक छोटा सा नन्हा सा देश है वहां की एक महिला को यहां औरंगजेब रोड़ पर चोट लगती है तो वहां का prime minister तुरंत react करता है। हमारे यहां वो reaction नहीं होता है। हमारे यहां जीवन की कीमत ही नहीं है। हमें लगता है कि 121 करोड़ का देश है इसलिए यहां जीवन की कीमत करने का कोई मतलब नहीं। जब तक जिंदगी की कीमत नहीं रहेगी, इसे हम अपनी सोच में समाहित नहीं करेंगे, यकीन मानिए जब तक इन बुनियादी चीजों पर चर्चा नहीं होगी। तब तक बहुत सबल हिंदुस्तान के बारे में हम सोच ले और ये सोचे कि हिंदस्तान आने वाले समय में सुपर पॉवर हो जाएगा। मुझे इस बारे में थोड़ी आपत्ति है। इसलिए हिंदुस्तान के intellectuals को अपना दोगलापन छोड़ना पड़ेगा। हिंदुस्तान के intellectuals को भारतीय दर्शन में जाकर विदेशी दर्शन से प्रेरणा लेने का लोभ छोड़ना पड़ेगा। आम व्यक्ति के जीवन को समझना पड़ेगा। जब तक यह नहीं होगा तब तक दिक्कत होगी।। दिक्कत इसी स्तर पर होगी कि राजनीति आपके लिए रास्ता तैयार करेगी आप उसका draft तैयार करेंगे। वह दिन कब आएगा जिस दिन आप draft तैयार करे और राजनीति उस पर चलें। वो दिन मैं भी देखूंगा। आप भी देखेंगे। बहुत–बहुत शुक्रिया।

वस्तुनिष्ठता और संत जीवन– बौद्धिकता का शाश्वत आधार

दत्तात्रेय होसबाले

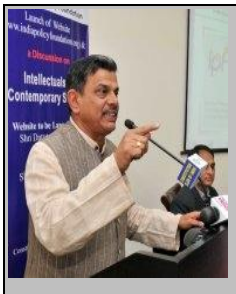

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सह सरकार्यवाह श्री दत्तात्रेय होसबाले सामाजिक कार्यकर्ता होने के साथ ही प्रखर चिंतक के रूप में भी प्रतिष्ठित हैं। लोकतंत्र के प्रति अपनी प्रतिबद्धता के चलते ही आपातकाल के दौरान उन्होंने "भारतीय आन्तरिक सुरक्षा कानून" के अन्तर्गत 16 महीने की करावास की सजा भी काटी थी। 17 फरवरी, 2012 को भारत नीति प्रतिष्ठान के वेबसाईट का लोकार्पण करने के बाद अन्तिम वक्ता के रूप में "समकालीन समाज में बुद्धिजीवी" विषय पर अपना वक्तव्य प्रस्तुत किया था। अपने संबोधन में श्री दत्तात्रेय जी ने बौद्धिकता और छद्म बौद्धिकता के फर्क को समझने के साथ ही संवाद में सूचना तकनीक के उपयोग को भी महत्वपूर्ण माना था। उनका यह भी कहना था कि बौद्धिक व्यक्ति ही निरन्तर खोज करने के बाद सत्य से साक्षात्कार कर संत बनता है। उन्होंने बौद्धिकता की पश्चिमी और भारतीय परंपराओं का तुलनात्मक स्वरूप प्रस्तुत किया है।

बौद्धिक चर्चा के लिए देश में प्रौद्योगिकी के सभी संसाधनों का उपयोग करना भी अत्यंत आवश्यक है। इस दृष्टि से इस website को सार्वजनिक अवलोकन के लिए launch करना अत्यंत आवश्यक था। इसलिए पहल तो मैं इसकी launching के लिए बधाई और शुभकामनाएं देता हूं। पहली शुभकामना इसिलए कि इसका सार्थक उपयोग करते हुए देश हित में जनता के बीच चर्चा और संवाद इसके माध्यम से कायम हो और दूसरी शुभकामना पुनः इस बात के लिए देता हूं कि दुबारा इसका hack न हो। अब जहां तक hacking की बात है तो यह सिर्फ प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में होता हो ऐसा नहीं है। जैसा कि आशुतोष जी ने बताया कि intellectual hack करने वाले लोग भी समाज में मौजूद हैं। भारत में कुछ चीजें कुछ खास लोगों तक ही सीमित रहें इसके लिए पिछले 60–70 सालों से hack करने वाले, hacking करते रहे हैं। इसलिए hack करने की यह अपसंस्कृति समाज में कई दशकों से कायम है।

भारत नीति प्रतिष्ठान के राकेश सिन्हा जी और अन्य वक्ताओं ने intellectuals के बारे में जो चित्रण किया है उसके बाद मुझे सोचना पड़ेगा कि क्योंकि मैं तो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से जुड़ा हूं तो intellectuals हो ही नहीं सकता, non-intellectual हूंए anti-intellectual हूं। बाकी लोगों के बीच यह भी प्रचारित किया जायेगा कि contemporary society में intellectuals की बात करने का अधिकार भी मुझे नहीं है क्योंकि intellectuals के बारे में बात करने का अधिकार सिर्फ उसे है जो intellectual हैं, जो intellectual नहीं हैं उन्हें इस बारे में बात करने का अधिकार भी नहीं है। सड़क पर रहने वाले लोग अगर लोकपाल बिल नहीं बना सकते तो intellectuals arena से बाहर रहने वाले लोग intellectuals की बात कैसे कर सकते हैं? इसलिए इस लिहाज से आपको discard किया जाएगा।

कौन intellectuals हैं और कौन नहीं इस पर काफी चर्चा हो चुकी है और मैं इस पर ज्यादा कुछ कहना नहीं चाहता, न यह मेरे अधिकार क्षेत्र में है। हां. लेकिन ईमानदारी से सत्य की निरंतर खोज करते रहने, उसको व्यक्त करते रहने वाला ही, बुद्धिजीवी है। जब सत्य से साक्षात्कार करता है तो वो संत बनता है और संत को intellectual बनने की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि वह बुद्धि के क्षेत्र से हृदय के क्षेत्र में प्रवेश करता है। संत को स्वयं को बुद्धि से समझाना नहीं पड़ता वह तो हृदय से निर्देशित होता है। इसलिए सत्य की निरंतर खोज करने वाला ही intellectual है और जब उसे सत्य का साक्षात्कार हो जाता है तो वह संत बनता है। यही हमारे भारत की परंपरा है।

The power of intellect is such that through process of their intellectual pursuit they attain the stage and level of sainthood. हमारे देश के ऋषि, संत तथा अन्य कई नाम जो अभी–अभी चर्चा में आएं है वे सब इसी श्रेणी में आते हैं।

इसके अलावा एक और बात जर्ा चर्चा में आई है, वह है intellectuals के दोहरेपन के बारे में। बहुत साल पहले भारत के एक शीर्षस्थ पत्रकार श्री जनार्दन ठाकुर ने intellectuals के बारे में एक टिप्पणी की थी, जो मुझे आज भी याद है। वह ऐसी थी कि 'they want to hve the image of the left and the comforts of the right'.

तो यह एक विडम्बना है भारत के बुद्धिजीवियों के double standad hypocracy की। आज के बुद्धिजीवी सरकार की सुविधाएं पाने के लिए या फिर विदेशी आकर्षण में फंस कर अपनी बौद्धिक क्षमता को बेचने के लिए आतुर रहते हैं।

सैकड़ों वर्ष पहले की बात है। कश्मीर के तत्कालीन राजा ने यह सुना कि उसके राज्य में एक अत्यंत ख्याति प्राप्त विद्वान रहते हैं, लेकिन वे अत्यंत गरीबी में गुजर

बसर करते हैं और एक छोटी सी झोपड़ी में रहते हैं। यह सुनकर राजा उस विद्वान की झोपड़ी पर बहुत सारा धन दौलत लेकर गए और उनसे विनम्रता पूर्वक कहा कि वे इसे ग्रहण करें क्योंकि उनके गरीबी में रहने से उन्हें कष्ट होता है। तब यह सुनकर उस विद्वान व्यक्ति ने अपनी पत्नी से कहा कि 'हमारा यहां इस हाल में रहना राजा को कष्ट देता है। इसलिए सामान बांध लो। हम कहीं और जाकर रहेंगे।' राजा यह सुनकर बड़ा आश्चर्यचकित हुआ और पूछा कि मुझसे क्या गलती हो गई। तब उसे विद्वान ने कहा कि 'मैं अपने हाल पर यहां खुश हूं, आप भी अपने महल में आराम से रहिए। अन्यथा मैं यहां से कहीं और प्रस्थान कर जाऊंगा।'

जाहिर ह कि हमारे देश में intellectuals की ऐसी स्वस्थ परंपरा रही है। सदियों तक हमारे देश के बुद्धिजीवी, ऋषि या संत किसी राजा के आश्रय में नहीं गए। यही वजह है वे लोग आज भी समाज में पूजनीय हैं। जिन्होंने राजमहल को आश्रय बना लिया समाज उनको पूछता भी नहीं, उनकी सोचता भी नहीं। जो इससे परे रहे, जो उनसे स्वतंत्र रहे, वही लोग आज भी याद किए जाते हैं।

मुझे लगता है कि तीन चीजें intellectuals, विद्वान या फिर जिन्हें बुद्धिजीवी कहते हैं उनके लिए आवश्यक हैं:–

1. परिवेश और स्वातंत्र्य– परिवेश जिसके बारे में आशुतोष जी ने और वेंकट नारायणन जी ने कहा और स्वातंत्र्य का तात्पर्य है– मुक्त रूप से कहने का स्वातंत्र्य और विरूद्ध बातें सुनने की सहिष्णुता। बौद्धिक स्वतंत्रता का अर्थ है कि बुद्धिजीवी आंतरिक और बाह्य दोनों रूप से स्वतंत्र हो– Freedom is prerequisite.
2. चारित्र्य– जिसके अंतर्गत ईमानदारी एवं दोहरेपन की हर तरह की बातें आती हैं। जो व्यक्ति अपने चरित्र से चीजों को स्थापित नहीं कर सकता और केवल बातों से, वाणी से, लेखन से, बौद्धिकता से, तक से स्थापित करने का प्रयास करता है, वह बहुत समय तक नहीं टिकता है।
3. क्रियाशीलता– हमारे यहां एक कहावत रही है "यः क्रियावान् सः पण्डितः।" तो बौद्धिक क्षेत्र में जो बुद्धिजीवी हैं उन्हें हमेशा क्रियाशील रहना चाहिए। क्रियाशीलता समाज के पक्ष में, समाज के हित में। उन्हें हमेशा अपनी बौद्धिक क्षमता को क्रियाशील बनाए रखना चाहिए। They should also be activists, intellectual activists.

बुद्धिजीवियों के बारे में अक्सर कहा जाता है कि वे समस्या तो बताते हैं पर समाधान नहीं। जैसा कि श्री

वैंकटनारायणन जी ने भी कहा। इस संबंध में मुझे नेपोलियन के जीवन की एक घटना याद आ रही है। एक युद्ध के दौरान जब नेपोलियन बोनापार्ट अपनी रणनीतियों को लाग् कर रहे थे तो अक्सर वहां के पत्रकार उसकी उन नीतियों की आलोचना करते थे कि ऐसा नहीं किया या फिर ये क्यों किया वगैरह–वगैरह। इससे परेशान होकर नेपोलियन ने सभी पत्रकारों को दावत पर बुलाया और पूछा कि आप मेरी हर रणनीति पर सवाल उठाते रहते हैं। आज आप ही बताइए कि मैं अपने आगामी अभियान को किस तरह क्रियांन्वित करूं। तब सारे पत्रकारों ने एक साथ हाथ खड़े कर दिए और कहा कि यह हमारा काम नहीं है। आप पहले काम करो फिर हम उसके बारे में लिखेंगे कि क्या गलत है और क्या सही। तो बुद्धिजीवियों के बारे में ऐसी धारणा बड़ी आम रही है।

एक और बात जो देश की शहरी सोच के बारे में है, Value of Life के बारे में। माननीय धर्मपाल जी ने लिखा है कि कैसे एक छोटी सी सोच इस देश के बुद्धिजीवियों की दिशा, नीतियों की दिशा और इस देश के प्रशासकों की दिशा को बदल देती ह। व्यवस्थाओं के शहरीकरण ने किस तरह भारतीयता को भारत से निकालने का प्रयास शुरू कर दिया है। उन्होंने आगे लिखा है कि अपने देश की परंपरा क्या थी और अब क्या हो गई और इसके क्या–क्या दुष्परिणाम हमें भुगतने पड़ रहे हैं।

आज से ठीक पहले एक माह पहले 14 जनवरी, 2012 को इसी Constitution Club में दिल्ली के उद्योगपतियों को संबोधित करते हुए मैंने कहा था कि पिछले 10–11 सालों में हिन्दुस्तान में तकरीबन 1 लाख किसानों ने आत्महत्याएं की। लेकिन कहीं कोई चर्चा नहीं हुई। लेकिन यदि हिन्दुस्तान में एक हजार IT professionals ने खुदकुशी की होती, यदि एक हजार उद्योगपतियों ने आत्महत्याएं की होती तो देश में revolution हो जाता। एक लाख अन्नदाताओं ने खुदकुशी की इस भारत में और देश चल रहा है। लेकिन यदि ऐसी ही कोई घटना किसी और क्षेत्र में घटी होती तो हड़कंप मच जाता। यदि चार IT companies बंगलौर से बाहर जाने की बात करें तो सारे देश में भूचाल आ जाएगा। लेकिन एक लाख किसान, एक लाख किसानों के परिवार बर्बाद हो गए, न दिल्ली हिली न देश हिला। यह है हमारी शहरी सोच और हमारी value for life. वास्तव में हम भारत में रहकर भी भारत से अलग हो गए हैं और जब हम भारत से अलग होते हैं तब स्वाभाविक रूप से ऐसा ही होता है। ऐसा क्यों हुआ? ऐसा कब से हुआ? जब हमने अपनी शासन पद्धति को भुलाकर नेहरूवियन मॉडल को

अपनाया तब से यह शुरू हुआ। जब हमने institutions को, academia को, media को एक लीक पर चलाने का प्रयास किया तब हम भारत से अलग हो गए।

पिछले दिनों प्रो. बाल गंगाधर[1], जो मार्क्सवाद के बहुत बड़े पुजारी माने जाते रहे, जिन्होंने बहुत सारी पुस्तकें लिखी हैं वे कहते हैं कि मैं लगभग दो ढाई दशक तक गलत रास्त पर चलता रहा। लेकिन अब भारत में आकर, विश्वविद्यालय के सुशिक्षितों के बीच आकर कह रहे हैं 'decolonise the Social Science'. जाहिर है हम भारत की विरासत से अलग होकर पाश्चात्य प्रभाव में चले गये हैं। हमारा mind colonized हो गया है। परिणामतः हमारा Social Science colonized हो गया है, हमारी चिंतन प्रक्रिया भी colonized हो गई है। तो इसको decolonize करने की जरूरत है और इसी अभियान में प्रो. बाल गंगाधर लगे हुए हैं। वह भी तब जब वह बीस साल तक वामपंथ के पुजारी रहे हैं। बुद्धिजीवियों के बीच वामपंथी और दक्षिणपंथी की लकीरें खीचना गलत है। बुद्धिजीवी बुद्धिजीवी होता है। उसे समाज के सामने खड़े होने के लिए, अपनी इमेज बचाने के लिए, किसी comforts को लेने के लिए वामपंथ या दक्षिणपंथ का जामा पहनने की जरूरत नहीं होनी चाहिए। वास्तव में जो बुद्धिजीवी होता है उसका न वामपंथ होता है न दक्षिणपंथ। जो सत्य है उसको स्वीकार करने की परम्परा इस देश की रही है। इस देश की परंपरा है शास्त्रार्थ की। समाज में फैली untouchbility के बारे में सब बाते करते हैं। लेकिन दूसरी तरफ एक intellectual untouchbility वर्षों से इस देश में चलाई जा रही है। मुझे लगता है एक Euocentric mind रहा है जिसने भारत को, भारत की बौद्धिकता को, भारत की विद्वता को, भारत की शिक्षा के आयामों को colonized करके रखा हुआ है। उसे decolonize करने की आवश्यकता है। बौद्धिक योगदान से ही देश के अंदर, समाज के अंदर, राश्ट्र के अंदर परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारंभ की जा सकती है। And it has to be preceded by fierce intellectual exercise and battle. बौद्धिक क्रियाशीलता के बिना कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। भारतीय राष्ट्र हित में, संस्कृति पूरक मानव के पक्ष में एक स्वर्णिम दिन आने की संभावना बहुत प्रबल दिखाई पड़ रही है। यद्यपि हिन्दुस्तान में भ्रष्टाचार, अनैतिकता राजनीतिक द्वेष बहुत सारे दिख रहे हैं मगर इन सबके बीच भी कई बार एक silver line दिखाई पड़ती है। न केवल भारत के

[1] प्रो. एस.एन. बाल गंगाधर Ghent University, Belgium में प्राध्यापक हैं।

लिए अपितु समस्त विश्व के लिए भारतीय बौद्धिक चिंतन की आवश्यकता है और उस आवश्यकता को पूरा करने क लिए भारत नीति प्रतिष्ठान, उसके प्रकाशन, उसकी website, उससे जुड़े सभी लोग और यहां बैठे आप सभी का मैं धन्यवाद करता हूं।